“सांगीतिक विधाओं के परिप्रेक्ष्य में रस तत्त्व के सैद्धांतिक आलेखन, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन”

फॅकल्टी ऑफ़ परफोर्मिंग आर्टस
धि महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी ऑफ़ बरोड़ा
पी.एच.डी. हेतु प्रस्तुत
शोध संक्षिप्ति (Summary)

शोधकर्ता (Researcher)
निर्झरी अवनीश ठक्कर
रजिस्ट्रेशन नं. : FOPA / 60 रजिस्ट्रेशन दिनांक : ३१ दिसंबर २०१६

मार्गदर्शक (Guide)
प्रो. राकेश महिसुरी
प्रोफेसर इन इन्स्ट्रुमेन्टल म्युज़िक
डिपार्टमेंट ऑफ़ इन्स्ट्रुमेन्टल म्युज़िक
फॅकल्टी ऑफ़ परफोर्मिंग आर्टस
धि महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी ऑफ़ बरोड़ा

२०१६-१७

संक्षिप्ति (Summary)

"सांगीतिक विधाओं के परिपेक्ष्य में रस तत्त्व के सैद्धांतिक आलेखन, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

भूमिका

मनुष्य द्वारा निर्मित अनेक विधाओं में एक ललित कला भी है। ललित कला सौन्दर्य निर्माण करती है। सौन्दर्य के क्षेत्र में अभ्यास करके विद्वानों ने जो शास्त्र निर्माण किया, वह 'सौन्दर्यशास्त्र' कहलाया। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का वर्णन है, जो है : 'रस-सिद्धांत'।

रस तत्त्व को लेकर मुख्यतः तीन पहलु हैं : ग्रंथों में आलिखित रस-सिद्धांत, कला के कारण रस की अनुभूति तथा कला के माध्यम से रस की अभिव्यक्ति।

एक ललित कला के रूप में संगीत भी रस से संबंधित है। उसकी तीनों विधाएँ - गायन, वादन तथा नर्तन अपनी निजी विशेषता से रस तत्त्व को उजागर करती हैं।

प्रस्तुत शोधकार्य में संगीत कला की तीनों विधाएँ - गायन, वादन तथा नर्तन के परिप्रेक्ष्य में रस का जो सैद्धांतिक आलेखन हुआ है, रस की जो अनुभूति होती है तथा रस की जिस प्रकार से अभिव्यक्ति होती है - इनका विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

प्रकरण १ : कला एवं उसमें निहित तत्त्व रस

प्राचीन काल से विभिन्न संस्कृतिओं में कला का कई प्रकारों में वर्गीकरण करने का प्रयास होता रहा। वर्तमान समय में पाश्चात्य तथा पूर्वीय दोनों संस्कृतिओं में मुख्यतः कला के दो वर्ग माने गये हैं - उपयोगी कला एवं ललित कला। व्यावहारिक जीवन-निर्वाह की स्थूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली कलाओं को 'उपयोगी

कला' श्रेणी में रखा गया है। इन कलाओं का प्रथम प्रयोजन उपयोगिता है, सौन्दर्य का प्रयोजन गौण है। भावाभिव्यक्ति के जरिये सौन्दर्य-निर्मिति एवं आनंद-प्राप्ति करवाने वाली कलाओं को 'ललित कला' श्रेणी में रखा गया है। इन कलाओं का प्रथम प्रयोजन भावाभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य-निर्मिति है, उपयोगिता का प्रयोजन गौण है।

ललित कलाओं के अंतर्गत स्थापत्य, शिल्प, चित्र, साहित्य एवं संगीत समाविष्ट हैं। माध्यमों के वैशिष्ट्य, भिन्नता के कारण प्रत्येक कला अपने विशिष्ट, निजी ढंग से सौन्दर्य-निर्माण करती है।

ललित कलाएँ जिस सूक्ष्म, सुप्त संवेदन, भाव तत्त्व की प्रस्तुति, अभिव्यक्ति करती हैं, उनके परिष्कृत, उजागर रूप को भारतीय मनीषिओं ने 'रस' कहा है। रस को अंतःकरण स्थित भावनाओं की पराकाष्ठा, उनका परमोत्कर्ष माना गया है। अनुभव, भावनाएँ व्यक्तिगत होते हैं, उन्हें कलाकार द्वारा कला में स्थान देने पर वे सार्वभौम, सार्वत्रिक बनते हैं; सभी के लिए भोग्य, रुचिकर बनते हैं। यह रुचिकर तत्त्व ही 'रस' है। ललित कलाओं में अभिव्यक्त होने वाली संवेदना, भावना रसानुभूति एवं रसाभिव्यक्ति है। रस कलाकार एवं रसिक के मध्य का सेतु है, जो दोनों को भावनागत कृतकृत्यता प्रदान करके आध्यात्मिक परमानंद की प्राप्ति करवाता है। भारतीय विद्वानों ने रसानुभूति को ब्रह्मानंद की अनुभूति मानी है। इस प्रकार, संवेदना रस के रूप में कला के माध्यम से अभिवव्यक्त होती हैं, अतः रस और कला का संबंध घनिष्ठ है। रस ही वह अलौकिक तत्त्व है, जिसके कारण कलाएँ अलौकिकत्त्व को प्राप्त करती है।

<u>प्रकरण २ : रस का ऐतिहासिक विवेचन तथा अपने अंगों के साथ विस्तृत वर्णन</u>

रस-सिद्धांत को व्यवस्थित रूप से प्रतिष्ठापित करने का कार्य भरतमुनि ने किया। उनके अनुसार, विभिन्न भावों के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है। उनके पश्चात उनकी रस विचारणा पर अपना मंतव्य, विचार-विमर्श प्रस्तुत करने वाले विद्वानों में

भट्ट लोलट, शंकुक, भट्ट नायक तथा अभिनव गुप्त मुख्य हैं। भट्ट लोलट के अनुसार रस की उत्पत्ति होती है, अतः उनका मत 'उत्पत्तिवाद' कहा गया है। शंकुक के अनुसार रस का अनुमान किया जाता है, अतः उनका मत 'अनुमितिवाद' कहा गया है। भट्ट नायक के अनुसार रस की मुक्ति होती है, अतः उनका मत 'मुक्तिवाद' कहा गया है। अभिनव गुप्त के अनुसार रस की अभिव्यक्ति होती है, अतः उनका मत 'अभिव्यंजनावाद' कहा गया है। इनके पश्चात भी आधुनिक काल पर्यंत विभिन्न विद्वानों द्वारा रस-सिद्धांत को लेकर चवर्णा होती रही है।

विभिन्न संवेदना, भावना के आधार पर भिन्न-भिन्न रस का आविष्कार माना गया है। इस संख्या को लेकर भी मत-मतांतर हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा रस की संख्या ४, ८, ९, १० या ११ मानी गई। अत्याधिक प्रमाण में '९ रस सिद्धांत' को मान्यता मिली है, जो वर्तमान समय में भी प्रचलित है। इस सिद्धांत के अनुसार श्रुंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, अद्‌भुत, बीभत्स, भयानक तथा शांत को मुख्य रस के रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति तथा वात्सल्य को श्रुंगार की शाखा माना गया है। उल्लेखनीय है, कि समयांतर पर रस-संख्या में वृद्धि हुई, परंतु किसी भी प्रस्थापित रस को मुख्य रस के स्थान से कभी भी हटाया नहीं गया।

रस की निष्पत्ति जिन भावों के संयोग से है, उनमें भरतमुनि ने स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारीभाव को माना है। किसी भी रस-विशेष की निष्पत्ति के लिए जिम्मेवार मूलभूत भावनाजन्य मानसिक स्थिति उसका 'स्थायीभाव' है। स्थायीभाव के अस्तित्त्व के लिए कारणरूप परिस्थिति या पदार्थ 'विभाव' है। स्थायीभाव की प्रदीप्ति के साथ होनेवाले (शारीरिक) परिवर्तन 'अनुभाव' हैं। स्थायीभाव के अनुरूप, उसके साथ आते-जाते रहने वाले क्षणिक भाव 'व्याभिचारीभाव' हैं। भाव तथा रस के मध्य बीज तथा अंकुर जैसा, जनक-जन्य संबंध माना गया है। रस को जन्य तथा भाव को उसका जनक माना गया है। भरतमुनि तथा अन्य विद्वानों ने रस के देवता, वर्ण (रंग), इत्यादि भी बताये हैं।

विभिन्न ललित कलाओं में प्रायः सभी रस प्रस्तुत होते हैं, पर उनके प्रमाण में काफी वैविध्य, असमानता है। संगीत कला की तीनों विधाएँ गायन, वादन तथा नर्तन के लिए भी यही बात उपयुक्त है। तीनों विधाएँ अपने निजी माध्यम, लक्षण, क्षमता के अनुसार विभिन्न रस की निष्पत्ति में मुख्य या सहायक माध्यम बनती है।

प्रकरण ३ : संगीत की विधाओं के घटक तत्वों का सौंदर्य एवं रस से संबंध

संगीत कला के मूलभूत माध्यम के रूप में अति सूक्ष्म ऐसे स्वर तथा लय हैं। ये अति सूक्ष्म उपदान भावों की गहराई को जिस हद तक अभिव्यक्त कर सकते हैं, वह अन्य माध्यमों के लिए अत्यंत कठिन (या असंभव) है। अतः रस-निष्पत्ति के परप्रेक्ष्य में संगीत को सर्वश्रेष्ठ कला माना गया है। ध्वनि के स्वयंभू या प्रयत्नसाध्य उतार-चढ़ाव आम बात-चीत में भी भावाभिव्यक्ति के प्रभाव में वृद्धि करते हैं। संगीत ध्वनि के उतार चढ़ाव पर ही आधारित है। अतः विदीत है, कि उसमें भावाभिव्यक्ति अत्याधिक प्रभावी है, सहज है।

संगीत अपने आप में आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत उत्कृष्ट कला मानी गई है। विशेषतः भारतीय संगीत की प्रस्तुति हमेशा से ईश्वर के उपलक्ष्य में मानी गई है। आराधना के रूप में उनके चरणों में समर्पित की जाती है। भगवान तथा भक्त का, साध्य तथा साधक का संबंध नायक-नायिका संबंध में हर प्रकार की भावनाएँ शामिल होने से नव रस की अनुभूति तो होती ही है, परंतु अभिव्यक्ति ईश्वरीय तत्त्व के उपलक्ष्य में होने से आध्यात्मिक, समर्पित, उपासना भाव कायम रहता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत आध्यात्मिकता तथा स-रसता का सुन्दर मेल है।

संगीत का प्रभाव अत्याधिक विस्तृत है। उसके प्रभाव की शीघ्रता तथा तीव्रता उसकी विशेषता है। उसका प्रभाव आयु, वर्ग, शिक्षा, संस्कृति, इत्यादि से परे है। यहाँ तक की पशु-पक्षी तथा वनस्पति तक उससे प्रभावित होते हैं। संगीत कला का प्रभाव

सीधा हृदय पर अविलंब पड़ता है, उसे समझने की आवश्यकता नहीं होती। उसका रसास्वादन सर्वभोग्य है।

भावाभिव्यक्ति, रसाभिव्यक्ति हेतु संगीत कला के विभिन्न घटक-तत्त्व कार्यरत हैं। मूलतः संगीत नाद पर आधारित है। नाद उसका आधारभूत, नीवीं तत्त्व है। संगीत की विभिन्न विधाओं में भिन्न-भिन्न घटकों के साथ संयोजित होकर यह तत्त्व उजागर होता है और परिणाम स्वरूप सौन्दर्य-निष्पत्ति करता है। इन घटकों में श्रुति, स्वर, राग, लय, ताल सामान्य (common) हैं, जो तीनों विधाओं में उपयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त गायन विधा में शब्द, वादन विधा में वाद्य-विशेष के ध्वनि-लक्षण तथा नर्तन विधा में अभिनय भी मूलभूत घटक के रूप में समाविष्ट हैं। विद्वानों ने संगीत-प्रस्तुति से होने वाली रस-निष्पत्ति का मूल सांगीतिक घटकों का रस से संबंध माना। उस पर विचार-विमर्श किया। फल स्वरूप संगीत-शास्त्र में इन घटकों का रस के साथ क्या संबंध है, उस विषय पर भी चर्चा हुई है। प्राचीन विद्वानों द्वारा स्थापित किये गए इन सिद्धांतों पर विचार-विमर्श जारी रहा, जिसके परिणाम स्वरूप मध्यकालीन तथा आधुनिक विद्वानों ने भी इस विषय में अपने-अपने मंतव्य दिये हैं।

प्राचीन तथा आधुनिक श्रुति-स्वर व्यवस्था, राग, ताल, वाद्य, अंग-भंगिमाएँ, इत्यादि में काफी तफ़ावत है। अतः प्राचीन समय में वर्णित सांगीतिक घटक तथा रस के संबंध को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सर्वथा अनुरूप नहीं माना जा सकता। परंतु, सांगीतिक घटकों में स्वभाव-गत कोई परिवर्तन नहीं हुआ है तथा शाश्वत, सनातन, ऐसे रस तत्त्व में भी कोई परिवर्तन नहीं है। अतः उनका परस्पर संलग्न होना निश्चित है।

प्रकरण ४ : संगीत में रस के स्थान का वास्तविक मूल्यांकन

किसी भी कला के आकर्षक, रसात्मक स्वरूप के लिए मूलतः दो पक्ष जिम्मेवार है। एक है तकनिकी या कला पक्ष और दूसरा भाव पक्ष।

संगीत के कला पक्ष के ऐसे कई तत्त्व हैं, जो भाव पक्ष की सटीक अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। प्रस्तुति के दौरान कुछ सूक्ष्म अलंकारी तत्त्वों के प्रयोग से सांगीतिक घटकों का संगीत कला में रूपांतरण होता है। इन तत्त्वों में मींड़, सूत, आंदोलन, गमक, कण, खटका, क्रिन्तन, जमजमा, मुरकी, स्वरित, स्थाय, सप्तक, संवाद, काकु, वर्ण, अलंकार, बंदिश, आलाप, तान, विश्रान्ति, शैली, तांडव-लास्य, नायक-नायिका भेद, इत्यादि समाविष्ट हैं। विभिन्न घटकों से संयोजित होकर ये तत्त्व भिन्न-भिन्न रस के पोषक बनते हैं। कलाकार के लिए रसाभिव्यक्ति के ये माध्यम रसिक के लिए रसानुभूति के कारण सिद्ध होते हैं।

भाव की उपस्थिति इस बाह्य सौन्दर्य में प्राण का संचार करके उसे अत्याधिक प्रभावपूर्ण बनाती है। कला में भाव-रस तत्त्व, सौन्दर्य तत्त्व इतना घुल-मिल गया है, कि उसके अलग अस्तित्त्व, उपस्थिति को लेकर रसिक और कभी कभी कलाकार भी जागरूक, सचेत नहीं होते। कला और रस का सह-अस्तित्त्व मान लिया गया है।

ये जागरूकता हटने पर कभी कभी छोटे-छोटे कारण कला में रस का, भाव का प्रमाण कम कर देते हैं। इन कारणों में तकनिकों का अत्याधिक, अनुचित प्रयोग; साहित्य पक्ष का अनुचित प्रयोग; अस्पष्ट उच्चारण; अत्याधिक लय; अत्याधिक लयकारी-प्रदर्शन; तानों का अनुचित, अत्याधिक प्रयोग; अप्रचलित, कठिन राग-ताल का चयन; घटकों का अनुचित मेल; मुद्रा-दोष; रस-शिक्षा का अभाव; उपज के स्थान पर पूर्व-निर्धारण (fixation); राग-समय का उल्लंघन; संगतकार से सायुज्य का अभाव; कलाकार तथा आयोजक के मध्य तनाव, राजनीति; समर्पण का अभाव; कार्यक्रम के आयोजन, व्यवस्थापन में कमी; समय का अभाव; कलाकार की शारीरिक, मानसिक या भावनागत अस्वस्थता; कलाकार द्वारा रसिक की अपेक्षा एवं स्तर समझ न पाना; रसिक का अनुकूल न होना; कलाकार का रियाज़ कम होना; इत्यादि समाविष्ट हैं।

इन कारणों की वजह से रस-हानि होने पर कई बार रसिक का शास्त्रीय संगीत से मन उठ जाता है, उसे संगीत का यह प्रकार अत्याधिक जटिल, कठिन या अरुचिकर लगता है।

प्रकरण ५ : सांगीतिक सौन्दर्य एवं रसमयता के परिप्रेक्ष्य में रचनात्मक विचार-विमर्श एवं संभवित सुझाव

भारतीय शास्त्रीय संगीत का चाहक वर्ग बहुत बड़ा है, उसमें कोई संदेह नहीं। परंतु, साथ-साथ इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता, कि अन्य संगीत प्रकारों की तुलना में शुद्ध शास्त्रीय संगीत में रुचि रखने वाले लोगों की संख्या कम है। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत तथा सुगम संगीत की अपेक्षा जटिल है। लोक संगीत तथा सुगम संगीत शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा काफी सरल होने के कारण लोकभोग्य है। परंतु शास्त्रीय संगीत नीरस नहीं है। उसकी रसमयता बनाये रखने के लिए रस-हानि के कारणों का हाल निकालके प्रस्तुति करना आवश्यक है।

कलाकार की सज्जता; उसके लिए गुरु से सीना-ब-सीना तालीम; कलाकार की स्वभावगत ऋजुता, भावुकता; स्वतंत्र कल्पना, विचार शक्ति; कलाकार एवं रसिक की तन्मयता; रसिक की संवेदनशीलता एवं कल्पनाशक्ति; प्रचलित या लोकभोग्य कृति का चयन; कलाकार-रसिक के मध्य कल्पना, क्षमता, अपेक्षा आदि का मेल; समय - प्रहर तथा ऋतु आधारित रागों, कृतिओं का चयन; रस-शास्त्र का अभ्यास, रस-शत्रुता-मित्रता के प्रति लक्ष्य; तकनिक तथा भाव के मध्य सायुज्य, विवेक; कृति के घटकों (शब्द-राग-लय इत्यादि) का सुयोग्य मेल; स्पष्ट एवं सुमधुर उच्चारण; लय-लयकारी-तान इत्यादि का विवेकपूर्ण उपयोग; समयावधि में विभिन्न अंगों का विवेकपूर्ण समावेशन; मुद्रा-दोष रहित प्रस्तुति; सुयोग्य संगत; कला तथा कलाकारलक्षी आयोजन; कलाकार की शारीरिक, मानसिक तथा भावनागत स्वस्थता; इत्यादि रसमयता के परिप्रेक्ष्य से कला प्रस्तुति को उच्च स्तरीय बनाने के लिए आवश्यक पहलुओं में समाविष्ट हैं।

रस कला का हार्द है। रसमय कला ही कला का परिपूर्ण स्तर माना जा सकता है। वर्तमान भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में कुछ पहलू विचारणीय हैं, आवकार्य हैं।

सांगीतिक घटकों के वर्तमान स्वरूप तथा रस के संबंध पर पुनः विचारणा; लोक संगीत तथा सुगम संगीत जैसे भाव-प्रधान संगीत प्रकारों के भाव परक तत्त्वों का अभ्यास; घटकों के उत्कृष्ट मेल, सायुज्ययुक्त नवीन कृतिओं का निर्माण; भावप्रधान शब्दों पर अधिक प्राधान्य, स्वर-बेहलाव; संस्थाकीय शिक्षा में उच्च घरानेदार शिक्षा-पद्धति के अनुकरणीय गुणों का समावेशन; विद्यार्थी की विशिष्ट क्षमता को परखना और प्रोत्साहित करना; राग-माला चित्रावली तथा राग-ध्यान के श्लोक और दोहों का राग-शिक्षा के समय उपयोग करना; शिक्षा में विश्लेषणात्मक श्रवण या दर्शन को स्थान देना; विद्यार्थी की मौलिकता को महत्त्व देना; प्राथमिक शिक्षा में संगीत को समाविष्ट करना; इत्यादि उपयोगी एवं आवश्यक कदम हैं।

उपसंहार (Conclusion)

प्रस्तुत शोधकार्य विद्वानों द्वारा संगीत-ग्रंथों में वर्णित रस-सिद्धांत, संगीत के दौरान होनेवाली रस तत्त्व की अनुभूति तथा संगीत के माध्यम से होने वाली रस तत्त्व की अभिव्यक्ति का विश्लेष्णात्मक अध्ययन करने हेतु किया गया प्रयास है।

इसके अंतर्गत संगीत के दौरान रस तत्त्व की उपस्थिति के प्रमाण में पाये जाने वाले तफावत के कारण समझकर, उनका विश्लेषण करके संगीत अधिक से अधिक स-रस, रस-सभर कैसे संभव हो सकता है, उस प्रश्न का समाधान प्राप्त करने की कोशिश की गई। ग्रंथों में आलेखित रस-सिद्धांत के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सांगीतिक क्रियान्वयन के संभवित मार्ग की खोज इस शोधकार्य का लक्ष्य, ध्येय रहा।

इस शोधकार्य से निश्चितरूप से मेरा ज्ञान-संवर्धन हुआ है। फलस्वरूप उपलब्ध हुई माहिती का लाभ अन्यों को भी मिल सके, यही मेरी अभ्यर्थना है।